प्रसंगश:

आलोक मेहता

पंचायत के चरणों में समर्पण

राजनीतिकरण और विकेंद्रीकरण के साथ नेक इरादों की जरूरत

मणिशंकर अय्यर ने केंद्रीय पंचायत मंत्री बनने के बाद अपने गृह राज्य में ग्रामीण इलाकों के पंचों को संबोधित करते हुए स्वीकार किया कि 'असली पंचायत क्रांति तभी मानी जाएगी जब मेरे जैसे व्यक्ति को सांसद बनने के लिए पंचों के चरणों में समर्पण करना पड़े।' अय्यर की यह धारणा राजनीतिक बयानबाजी नहीं मानी जानी चाहिए। महात्मा गांधी, पं. जवाहरलाल नेहरू और फिर राजीव गांधी ने लोकतंत्र की सफलता के लिए पंचायतों को विकास की धुरी बनाने पर सर्वाधिक जोर दिया। अस्सी के दशक में राजीव गांधी ने पंचायत और नगर पालिका अधिनियम के जरिये पंचायतों को अधिकारसंपन्न बनाने के लिए महत्वपूर्ण पहल की थी। इसके बाद कुछ राज्यों में एक हद तक सत्ता का विकेंद्रीकरण हुआ लेकिन पिछले 10-12 वर्षों के दौरान पंचायतों के राजनीतिकरण और पंचों को भी भ्रष्ट बनाने के प्रयास बढ़ने से असली लक्ष्य गड़बड़ा गया। फिर ब्रिटिश राज की तर्ज पर भ्रष्ट प्रशासनिक तंत्र ने विकास कार्यक्रमों की नकेल अपने हाथ से नहीं निकलने दी।

यही कारण है कि तमिलनाडु जैसे राज्य (जो बीमारू नहीं कमाऊ राज्यों की श्रेणी में माने जाते हैं) में भी पंचायत के अध्यक्ष को विकास के किसी भी काम के लिए मात्र 491 रुपये से अधिक के खर्च की स्वीकृति देने का अधिकार नहीं है। इससे अधिक के खर्च के लिए उसे जिला कलेक्टर की अनुकंपा और स्वीकृति की आवश्यकता होती है। बस, खेल यहीं शुरू हो जाता है। पढ़ा-लिखा साहब बहादुर भोले-भाले सरपंच को विकास के समीकरण, भुगतान का गणित और सफलता के गुर समझाने लगता है। कुछ सिरफिरे जाल में नहीं फंसते तो देर-सबेर राजनीतिक या प्रशासनिक कोप के शिकार बनते हैं। कुछ राज्यों में पहले तो 10-10 साल तक पंचायतों के चुनाव नहीं हुए। यदि चुनाव हो गए तो सीमित अधिकारों के कारण हाथ-पैर बंधे से काम करने लगे। ग्रामीण जनता की जागरूकता बढ़ने के कारण पंचों से जवाब मांगा जाने लगा। लोग गांव की छोटी-छोटी समस्याओं का निदान न होने पर सरपंच को पेड़ से बांधकर पिटाई की धमकी देने लगे। कहीं लाठियां चलने लगीं और बिहार या आंध्र जैसे राज्यों के कई गांवों में नक्सलियों ने बंदूक के बल पर अपनी प्रशासनिक व्यवस्था कायम कर दी।

पंचायतों का कांग्रेसीकरण या भाजपाईकरण जितना खतरनाक साबित हुआ है, उसी तरह उन्हें भ्रष्ट बनाकर अफसरों ने विकास कार्यक्रमों को ग्रामीण क्षेत्रों में नफरत का मुद्दा बनवा दिया है।

ग्राम पंचायत महानगरों की तरह करोड़ों रुपये की लागत के फ्लाई ओवर बनाने का प्रस्ताव तो रखती नहीं है। उसे तो कुआं, प्राथमिक पाठशाला, मुख्य सड़क मार्ग तक जोड़ने वाली सड़क या गांव को बीमारी से बचाने के लिए सफाई करवाने के लिए सफाई कर्मचारी रखने इत्यादि के लिए स्वीकृति देनी होती है। अब आज की महंगाई में दस हजार की आबादी वाले गांव की सफाई के लिए कोई पंचायत मात्र 350 रुपये मासिक वेतन वाले पांच सफाई कर्मचारी रखकर काम चलाना चाहेगी तो कर्मचारी भी विद्रोह पर कैसे नहीं उतरेंगे? दिनभर गांव की कच्ची गलियों और शौचालयों की सफाई के लिए मात्र 12 रुपये प्रतिदिन की मजदूरी कहां का न्याय है? पंचों के पास अधिक मजदूरी देने के न तो अधिकार हैं और न ही बजट। अधिकारी पंचों को कठपुतली बनाना चाहते हैं और जनता गालियां देने लगती है। कर्नाटक की राजधानी बेंगलूर जिले की पंचायतों तक का हाल यह है कि यदि उनके लिए राज्य सरकार के स्तर पर पांच लाख रुपये का बजट निर्धारित होता है तो पंचायत के हाथ में सिर्फ एक लाख रुपया पहुंचता है।

मध्य प्रदेश में पंचायत-राज की सफलता के बड़े दावे दिग्विजय सिंह की कांग्रेस सरकार ने किए और राष्ट्रीय स्तर पर उसे सराहना मिली। लेकिन पिछले विधानसभा और फिर लोकसभा चुनाव में कलई खुल गई। सत्ता का विकेंद्रीकरण हुआ और हर जिले की पंचायतों में 10 साल तक जिंदाबाद के नारे भी लगते रहे। लेकिन दिग्विजय सिंह की खुली छूट के कारण निचले स्तर पर मंत्री, सांसद, विधायक, जिला कलेक्टर और सरपंच ने मिलकर बजट की ऐसी बंदरबांट की कि बड़ी संख्या में कुएं, सड़क, स्कूल कागज पर बनते और टूटते रहे। चुनाव आने पर भ्रष्ट सरपंचों की अपीलों को ग्रामीण मतदाताओं ने बुरी तरह नकार दिया।

इसलिए पंचायतों का कांग्रेसीकरण या भाजपाईकरण जितना खतरनाक साबित हुआ है, उसी तरह उन्हें भ्रष्ट बनाकर अफसरों ने विकास कार्यक्रमों को ग्रामीण क्षेत्रों में नफरत का मुद्दा बनवा दिया है। गांधी, जयप्रकाश नारायण, विनोबा भावे ने भारत के गांवों को यूरोप या अमेरिकी गांवों की तरह चमकाने का सपना नहीं देखा। वे भारतीय परिवेश के अनुरूप गांवों को स्वच्छ, सुंदर, शिक्षित और आत्मनिर्भर बनाना चाहते थे। कंप्यूटर, मोबाइल, टीवी क्रांति का दौर आने के कारण पिछले 15 वर्षों से गांवों को साफ-सुथरा और स्वस्थ बनाने की अपेक्षा उसे आधुनिक बनाने की लंबी-चौड़ी योजनाएं नरसिंह राव से वाजपेयी राज तक में बनती रहीं। रामविलास पासवान ने हाजीपुर और खगड़िया क्षेत्र के गांवों में फोन क्रांति भले ही करवा दी लेकिन जब कोई व्यक्ति 15 से 20 मिनट में गांव के एक कोने से दूसरे कोने तक पहुंच सकता है, वहां मोबाइल फोन की अपेक्षा क्या पीने लायक शुद्ध पानी वाला नलकूप, सर्दी-बुखार-दस्त की हालत में दवाई देने लायक अस्पताल और हिंदी माध्यम वाली आठवीं तक की शिक्षा दे सकने वाला स्कूल जरूरी नहीं है? इन प्राथमिकताओं को वही पंच तय कर सकते हैं जो ग्रामीण जनता द्वारा चुने जाते हैं और जिन्हें हर खर्च के लिए अफसर का मोहताज न रहना पड़ता हो।

पश्चिम बंगाल में वामपंथी सरकार ने गांवों में भूमि सुधार कार्यक्रम अवश्य क्रियान्वित किया लेकिन पंचायतों को राजनीति की अपेक्षा विकास पर पूरी ताकत लगा देने लायक नहीं बनाया। इसी कारण अब वहां भी ग्रामीण इलाकों की हालत बदतर होने लगी और किसान आत्महत्या करने लगे हैं। केरल में साक्षरता अवश्य बढ़ गई लेकिन गांवों में रोजगार के कार्यक्रम लागू नहीं होने से ग्रामीणों का गुस्सा कभी कम्युनिस्टों पर उतर रहा है तो कभी कांग्रेसियों पर। उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान जैसे राज्यों में जातीय समीकरणों ने पंचायतों को बौना बनाया है। मनमोहन सिंह के नेतृत्व वाली नई सरकार 28 और 29 जून को पंचायत व्यवस्था के जरिये ग्रामीण विकास और गरीबी उन्मूलन की रणनीति तय करने के लिए मुख्यमंत्रियों की बैठक करने जा रही है। इस बैठक में राजनीतिक पूर्वाग्रहों से ऊपर उठकर पंचायतों को प्रशासनिक चंगुल से मुक्त करने का उपाय खोजे जाने की संभावना है, लेकिन क्या आधुनिक अर्थव्यवस्था और कंप्यूटर क्रांति के चक्कर में न फंसकर गांधीवादी रास्ते से पंचायतों के कायाकल्प का राजनीतिक संकल्प लिया जा सकेगा? ●